मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-11, अङ्क-9 जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व-14 (वि.नि.सं. 2538) सितम्बर 2012

चेतावनी

स्वतः परिणमति वस्तु के,
क्यों करता बनते जाते हो।
कुछ समझ नहीं आती तुमको,
निःसत्व बने ही जाते हो॥1॥

अरे कौन निकम्मा जग में है,
जो पर का करने जाता हो।
सब अपने अन्दर रमते हैं,
तब किस विध करण रचाते हो॥2॥

वस्तु की मालिक वस्तु है,
जो मालिक है वही कर्ता है।
फिर मालिक के मालिक बनकर,
क्यों नीति न्याय गमाते हो॥3॥

सत् सब स्वयं परिणमता है,
वह नहीं किसी की सुनता है।
यह माने बिन कल्याण नहीं,
कोई कैसे ही कुछ कहता हो॥4॥

प्रधान सम्पादक
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

भूतपूर्व मुख्य सलाहकार
स्व. साहू रमेशचन्द्र जैन, नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक मण्डल
ब्र. पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, मङ्गलायतन वि.वि.
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, मङ्गलायतन
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
श्री लक्ष्मीचन्द बी. शाह, लन्दन
श्री पवन जैन, अलीगढ़
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व विशेषाङ्क - 14

क्या / कहाँ

ज्ञायक तो ज्ञायक ही है	3
ज्ञान का स्वरूप :.......	10
अवस्थादृष्टि से आत्मा....	16
सबै दिन जात न एक समान	23
समाचार-सार	30

प्रस्तुत अङ्क-प्रकाशन में सहयोग
वरजू बहिन
सुपुत्र **श्री जवरचंदजी**
दुलीचंदजी हथाया
(थाणावाले) मुम्बई-7
एवं
श्रीमती प्रज्ञा जैन, कल्याणी जैन,
बडोदरा
हस्ते **श्री अजित जैन,**
बडोदरा (गुज.)

पं. सं. : **DELBIL/2001/4685**
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा मङ्गलायतन मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।
सम्पादक : पण्डित कैलाशचन्द जैन, अलीगढ़।

बहिनश्री के जन्म दिवस के अवसर पर

ज्ञायक तो ज्ञायक ही है

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेष धारण किया हुआ है। ज्ञायकतत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेष नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है। आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक भी पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है।

(बहिनश्री के वचनामृत-105 पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन)

बात जरा सूक्ष्म है। आत्मवस्तु द्रव्य है, ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव... बस, त्रिकाल एक ज्ञायकभाव है; उस ज्ञायकभाव ने तो एक ज्ञायकपने का ही वेष धारण किया है। समयसार में आता है कि संवर, निर्जरा, मोक्ष - यह सब पर्यायवेष हैं, त्रैकालिक ज्ञायकद्रव्य के वह वेष नहीं हैं। ज्ञायक तो उस पर्यायवेष का भी ज्ञाता ही है। आत्मद्रव्य का वेष-स्वरूप तो त्रैकालिक ज्ञायकरूप है। क्या कहते हैं? कि आत्मा ने तो परमार्थत: त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेष धारण किया हुआ है। अहा! वस्तु के मूलस्वरूप की तो खबर नहीं है और ऊपर से सब डालियाँ-पत्ते तोड़ने लगे परन्तु मूल-जड़ तो हरीभरी है! सम्यग्दर्शन के बिना व्रत, तपादि करने लगे, परन्तु वह सब शून्य है, मिथ्यात्व की जड़ हरीभरी रखकर डालियाँ-पत्ते तोड़ने के समान है। समझ में आया कुछ? भगवान आत्मा तो त्रिकाल, नित्य-स्थायी एक ज्ञायकभाव ही है; उसने एक ज्ञायकपने का ही वेष धारण किया हुआ है।

भगवान ज्ञायक आत्मा सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय आनन्द का ध्रुवधाम है। नित्य-स्थायी उस ज्ञायकतत्त्व को, ध्रुव ज्ञायकस्वभाव को परमार्थत: संवर, निर्जरा या मोक्षादि कोई पर्यायवेष नहीं है। संवर, निर्जरा, केवलज्ञान और मोक्ष आदि व्यवहारवेष हैं। ज्ञायकभावस्वरूप मूलवस्तु तो अनादि-अनन्त ध्रुव एकरूप 'अस्ति'वान उपस्थित वस्तु है। उसका वेष-स्वरूप तो एक

ज्ञायकत्व ही है, उसे परमार्थत: एक ज्ञायकत्व का ही वेष है; इस प्रकार पहले समुच्चय से अस्ति की बात कही। अब नास्ति से स्पष्टीकरण करते हैं कि उसे संवर, निर्जरा, मोक्षस्वरूप पर्यायों का वेष नहीं है, क्योंकि त्रैकालिक ध्रौव्य में पर्यायभेद है ही नहीं।

अहा! व्यापार-धन्धे के पाप में पड़कर यह तत्त्व की बात सुनी ही कहाँ है? सूझी ही कहाँ है? चौबीसों घण्टे पैसा कमाने की मजदूरी करता है। अरे! धर्म के बहाने व्रत, तप आदि करे, वह भी ज्ञायकतत्त्व की प्रतीति बिना मजदूरी ही है। समयसार के निर्जरा अधिकार में आया है न, कि कोई जीव, जिनाज्ञा में कहे हुए महाव्रत और तप के भार से दीर्घ काल तक भग्न होते हुए-टूट मरते हुए-क्लेश प्राप्त करते हैं तो करो परन्तु जो साक्षात् मोक्षस्वरूप है, निरामय (-रागादि समस्त क्लेशरहित) पद है और स्वयं संवेद्यमान है - ऐसा यह ज्ञान तो ज्ञानगुण बिना किसी भी प्रकार वे प्राप्त कर ही नहीं सकते। यहाँ तो कहते हैं कि क्लेश के अभावस्वरूप जो संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह वेष भी ज्ञायक को नहीं है - सम्यग्दर्शन के विषयभूत ध्रुव ज्ञायकद्रव्य में नहीं है।

आहाहा! यह पुस्तक! अरे, कोई वेदान्ती पढ़े तो उसे भी एकबार ऐसा लग जायो कि यह तो कोई वस्तु है!

आहाहा! जानना, जानना, मात्र जानना-ऐसा ज्ञानरस जिसका ध्रुव स्वभाव है, वह त्रैकालिक एकरूप निज भगवान आत्मा ज्ञायकवस्तु है, उसे व्यवहार से संवर, निर्जरा और मोक्ष आदि वेष भले हों, निश्चय से तो वह वेष उसको नहीं है। अरे! ज्ञायकतत्त्व की ऐसी बात सुनने को भी नहीं मिले, वह विचार कब करेगा? और समझेगा कब? यह दुर्लभ मनुष्य-अवतार चला जा रहा है; इस समय यह नहीं समझा तो फिर कब समझेगा?

भगवान ज्ञायक आत्मा तत्त्व है न? वह ध्रुवतत्त्व है, पलटनेवाली पर्याय से-पर्याय की हलचल से-भिन्न है। ऐसे ज्ञायकस्वभाव को वास्तव में कोई पर्यायवेष नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है; संवर, निर्जरा और मोक्षपर्याय की भी अपेक्षा नहीं है; क्योंकि त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यस्वभाव में

तो कोई पर्यायभेद है ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात है भाई! बड़ी कठिन है! अभ्यास होना चाहिए। यह तो मूल वस्तु है; यहाँ से प्रारम्भ करना है। मूल ज्ञायकवस्तुरहित अन्य किसी प्रकार से प्रारम्भ करेगा तो अभिमान होगा कि — 'हमने यह त्याग किया है', 'हम बाल ब्रह्मचारी हैं', 'हमने प्रतिमा धारण की' — यह सब मिथ्यात्व का अभिमान है।

अहा! यह पुस्तक! पढ़ी है न? ....पूरी पढ़ी या नहीं? आहाहा! पुस्तक तो पुस्तक! प्रकाशित हुई है न! अहा! लोग तो ज्यों-ज्यों समय बीतेगा त्यों-त्यों इसे पढ़ेंगे, विचारेंगे तब.... भाई! यह तू मूल वस्तु है।

जिसे कोई भी पर्यायवेष नहीं है, ऐसी जो त्रैकालिक ज्ञायक वस्तु वह सम्यग्दर्शन का विषय है। चतुर्थ गुणस्थान में प्रारम्भ में भी सम्यग्दर्शन विषय जो ज्ञायकतत्त्व है, उसमें पर्याय की अपेक्षा नहीं है और पर्याय का वेष नहीं है। अहा! भाषा तो सादी है। भगवन्त! तेरा स्वरूप तो ऐसी वस्तु है! जिसमें अनेकता और भेद नहीं हैं, ऐसा जो एकरूप त्रैकालिक स्वरूप, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। उसके बिना सब थोथा-निःसार है।

ज्ञायकस्वभावी आत्मा की महिमा अनन्तानन्त है। प्रथम, क्षेत्र और काल की अनन्तता का ख्याल करो। क्षेत्र का अन्त कहाँ है? लोक के क्षेत्र के पश्चात् अलोक। आगे दूर... दूर... दूर, इस प्रकार ख्याल में लेते जाओ, फिर आगे अलोक... अलोक... अलोक... अन्त कहाँ है? है कहीं अन्त? इसी प्रकार अनादि काल के सम्बन्ध में विचार करो-पहले... पहले... पहले... इस प्रकार ख्याल को बढ़ाते जाने पर काल का सबसे पहला समय कौन सा? है कभी काल की आदि? इसी प्रकार भविष्य काल का ख्याल करो - फिर... फिर... फिर... ऐसा करते-करते काल का अन्त कब? अन्तिम समय कौन-सा? है कभी काल का अन्त? इस प्रकार जैसे क्षेत्र-काल की अनन्तता है, उसी प्रकार ज्ञानगुण भी भाव से अनन्त-अपार-अगाध-असीम गम्भीर है। ज्ञानगुण की भाँति सर्व गुणों की गम्भीरता अनन्त है। जो संख्या से अनन्त हैं, ऐसे ज्ञानादि अनन्त गुणमय अखण्ड एकतत्त्व तो उससे भी महागम्भीर है। इस प्रकार ज्ञायकस्वभावी भगवान

आत्मा की महिमा अनन्तानन्त है। उस अगाध महिमावन्त ज्ञायकद्रव्य को कोई पर्यायवेष नहीं है, किसी पर्याय की अपेक्षा नहीं है।

प्रश्न – आनन्द आया तो आत्मा का अनुभव हुआ; उसमें पर्याय-अपेक्षा आयी या नहीं?

उत्तर – अनुभव, आनन्दसहित ही होता है परन्तु उसमें ध्रुव ज्ञायकतत्त्व को आनन्दपर्याय की अपेक्षा कहाँ आयी? ज्ञायक को तो आनन्दपर्यायरूप वेष है नहीं, उसकी अपेक्षा है ही नहीं। अहा! ऐसा निरपेक्ष तत्त्व वीतराग जैन परमेश्वर के सिवा अन्यत्र कहाँ है?

प्रश्न – पर्यायवेष त्रैकालिक ज्ञायक आत्मा को नहीं है – इस बात का कोई आधार है? या मात्र बहिनश्री ने ही यहाँ कही है?

उत्तर – समयसार का नाटकरूप में वर्णन करते हुए प्रत्येक अधिकार के अन्त में कहा है न, कि 'यह संवर का वेष पूरा हुआ', 'यह मोक्ष का वेष पूरा हुआ।' जहाँ जीव ने जान लिया कि यह ध्रुव है और यह तो पर्यायवेष है, वहाँ वह जानते ही संवर, निर्जरा और मोक्ष आदि वेष-स्वांग निकल जाते हैं, और दृष्टि में परमार्थतः समस्त पर्यायवेष से रहित ज्ञायक आत्मा रह जाता है। इस प्रकार समयसार में भी यही कहा है। अहा! ऐसा है निरपेक्ष ज्ञायकतत्त्व!

लोग तो राग की क्रिया से निश्चय होता है – धर्म होता है – ऐसा मानते हैं। अरे, प्रभु! बहुत आगे बढ़ गया। यहाँ तो कहते हैं कि संवर-निर्जरा का वेष भी चैतन्य ध्रुव ज्ञायकवस्तु में कहाँ है?

प्रश्न – आप कहते हैं न, कि कुएँ में हो वह हौद में आता है?

उत्तर – वह किस अपेक्षा से? वह तो द्रव्य, गुण और पर्याय कोई भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं – इस अपेक्षा से कहा जाता है; व्यवहारनय से, पर्यायनय से, भेदनय से कहा जाता है। परमार्थ अभेदनय से तो जो ध्रुव ज्ञायक तत्त्व है, वह मोक्ष तथा मोक्ष के कारणरूप पर्याय की रचना करनेवाला नहीं है।

गजरथ चलाते हैं, मन्दिरों का निर्माण कराते हैं — वह सब बाह्य वस्तु की रचना तो आत्मा तीन काल में नहीं करता, परन्तु जो त्रैकालिक ध्रुव

ज्ञायक आत्मा है, वह संवर, निर्जरा तथा मोक्षपर्याय की भी रचना नहीं करता। भाई! तू प्रभु है तो कोई तत्त्व है या नहीं? तेरा तत्त्व अस्ति 'है' न? 'है' तो वह परिपूर्ण वस्तु है या नहीं? 'है' वह स्वभाव से अपूर्ण कैसे होगा? पूर्णता या अपूर्णता, ऐसे भेद तो पर्याय में आते हैं; वस्तु तो परिपूर्ण एकरूप त्रिकाल ज्ञायकभाव है। वह वस्तु सम्यग्दर्शन का विषय है, परन्तु वह सम्यग्दर्शन पर्याय, ध्रुव ज्ञायक में नहीं है। त्रैकालिक ज्ञायक को सम्यग्दर्शनरूप पर्याय की अपेक्षा नहीं है। मलिन पर्याय है तो मैं हूँ – ऐसी अपेक्षा तो है ही नहीं, परन्तु निर्मल पर्याय हो तो 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसा भी नहीं है। पर्याय तो वर्तमान प्रगट दशारूप अंश है और वस्तु प्रगट अंशरहित त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक है।

अहा! यह भगवान का कहा हुआ भेदज्ञान है; उसे कोई समझा नहीं है और बाहरी माथाकूट करके मर गया, भाई! अन्तर में जागृतज्योति-ज्ञायक भगवान-विराजती है, वह कभी निस्तेज नहीं होती; न्यूनाधिकता तो पर्याय में है, ध्रुववस्तु में न्यूनता-अधिकता है ही नहीं। ज्ञायकतत्त्व को परमार्थ: कोई पर्यायवेष अथवा पर्याय-अपेक्षा नहीं है। यह दो बातें हुईं। यह तो सिद्धान्त है, तत्त्व मात्र है। आया समझ में?

अहा, मुनि की दशा! तीन कषाय के अभावस्वरूप वीतरागी पर्याय और अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन-ऐसी मुनिपने की पर्याय भी ध्रुव द्रव्यस्वभाव में नहीं है। अभी तो शरीर, आत्मा में नहीं है, शरीर, शरीर में है और मैं उससे बिल्कुल भिन्न हूँ – यह बात भी नहीं बैठती, वहाँ निर्मल पर्याय भी ध्रुव द्रव्यस्वभाव में नहीं है और ध्रुव द्रव्यस्वभाव, पर्याय में नहीं आ जाता – यह तो बहुत सूक्ष्म है परन्तु अब तो लोग यह बात सुनने लगे हैं। अहाहा! त्रिकाल एकरूप ध्रुव ज्ञायक में मुनि का वेष भी नहीं है। बाह्य में नग्नता और अन्तर में पञ्च महाव्रत, समिति आदि के शुभविकल्प – वह कोई मुनिपने का परमार्थ वेष नहीं है परन्तु भीतर आत्मा की प्रतीतिसहित तीन कषाय का अभाव हुआ और आनन्द के प्रचुर संवेदनरूप दशा प्रगट हुई – ऐसा मोक्ष का मार्ग मुनि को जो प्रगट हुआ, वह भी ध्रुव ज्ञायक में नहीं है।

प्रश्न – व्यवहार से निश्चय होता है न? नहीं तो एकान्त निश्चयाभास हो जाएगा?

उत्तर – प्रभु! सुन तो सही! अपनी प्रभुता तो देख! व्यवहार के शुभराग की पर्याय तो कहीं रह गयी, परन्तु वीतराग निर्मलदशारूप मुनिपर्याय का भी जिसमें अभाव है, ऐसी तेरी ध्रुव ज्ञायकप्रभुता है। निर्मल पर्याय भी व्यवहारनय का विषय है और समस्त पर्याय से रहित ऐसा ध्रुव ज्ञायक द्रव्य, वह निश्चयनय का विषय है। अहा! आत्मा मुनि है अथवा केवलज्ञानी है – ऐसा पर्याय का वेष भी ध्रुव ज्ञायक में नहीं है। केवलज्ञान भी पूर्ण निर्मल पर्याय है। वह पर्याय, ध्रुवद्रव्य का वेष नहीं है। अद्‌भुत बात है नाथ! यह जैनदर्शन–वस्तुदर्शन है।

प्रश्न – केवलज्ञान वह पर्याय, परन्तु केवलज्ञानी तो आत्मा है न?

उत्तर – नहीं; ज्ञान की पूर्ण पर्यायवाला भी आत्मा नहीं है। आत्मा तो ध्रुव गुणस्वरूप सहजज्ञान की मूर्ति है। जो केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वह तो पर्याय है। गुण कभी उत्पन्न नहीं होता, गुण तो त्रिकाल ध्रुव है।

यहाँ प्रयोजन यह है कि एकरूप ज्ञायक की दृष्टि कराना है, पर्यायदृष्टि भी छुड़ाना है। अहा! यह पुस्तक ऐसी निकली है न! लोग पढ़ें... पढ़ने तो दो। अरे! ऐसा मनुष्यभव चला जा रहा है। इसमें त्रैकालिक सत्यवस्तु की दृष्टि नहीं हुई, तो उसे कुछ नहीं हुआ, उसने कुछ नहीं किया। भले ही दुकान छोड़ दे, ब्रह्मचर्य का पालन करे, जीवनपर्यन्त व्रतों का पालन करे, परन्तु सब निरर्थक है; वह तो जगत में भटकने के लिए सार्थक है। अहाहा! यह तो वस्तु है न? तत्त्व है न? हलचलरहित नित्य ध्रुव वस्तु है न? अहा! जो सुनने में भी कठिन लगे, उसे समझना है...! यहाँ कहते हैं कि – प्रभु! तू राग का वेष धारण करे, तथापि वह वेष तेरी त्रैकालिक ध्रुव वस्तु में नहीं है। अन्तर में आनन्दस्वरूप जो भगवान ज्ञायक, जिसमें यथार्थ मुनिपने का वेष भी नहीं है, उस पर दृष्टि करके जिसे सम्यग्दर्शन हुआ हो और जिसमें मोक्षमार्ग की दशा प्रगट हुई हो, वह ऐसा जानता है कि यह मुनिपने का वेश भी मेरे ध्रुवस्वभाव में नहीं है। अरे! अभी तो, यह नग्नता वह हमारा वेश है, हम दिगम्बर मुनि बने – ऐसा बाह्य वेश का अभिमान होता है! अरे,

भगवान! वह वस्तु तो तेरे आत्मा की पर्याय में भी नहीं है। उस बाह्य वस्तु का अभिमान करना कि 'हम नग्न दिगम्बर हैं', – वह तो मिथ्यात्व का पोषण है। अजब बात है भाई!

अहा! यहाँ तो अमृत की वर्षा हुई है! प्रभु, तेरी वस्तु जो अखण्ड आनन्द एवं अखण्ड ज्ञायकता है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन-पर्याय तथा केवलज्ञान-पर्याय भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है; क्योंकि वह तो पर्याय का वेष है। आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' अथवा 'सिद्ध है' ऐसी एक भी पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। अरे, सुनकर व्याकुल हो जाय ऐसी बात है न? भगवान! तेरी वस्तु कैसी है? भाई! तुझे खबर नहीं है। परमाणु जितनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तु में भी ऐसी ध्रुवरूप अनन्त शक्ति है कि उस शक्ति में पर्याय का प्रवेश नहीं है।

पर्याय, व्यवहारनय का विषय है; त्रैकालिक द्रव्य, निश्चयनय का विषय है। दो नय हैं तो दोनों के विषय भिन्न हैं परन्तु वीतराग की वाणी दोनों के विरोध का नाश कराती है। अहाहा! ज्ञायक तो ज्ञायक ही है; एक भी पर्याय की अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक को नहीं है। अरे! सिद्धपर्याय भी ज्ञायकभाव में नहीं है। अहा! सुनकर तिलमिला जाय, ऐसी बात है। क्या करे? किसी ने कभी सुना न हो, ऐसी बात है। ●●

आगामी विशिष्ट आयोजन

शाश्वत तीर्थधाम में पञ्च कल्याणक महोत्सव

सम्मेदशिखर : शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर की पावन धरा पर निर्मित श्री कुन्दकुन्द कहान नगर में आगामी 24 नवम्बर से 29 नवम्बर 2012 तक श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित किया जा रहा है। इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन, अध्यात्म जगत के विशिष्ट विद्वानों द्वारा प्रासङ्गिक स्वाध्याय के लाभ के साथ-साथ पावन तीर्थराज की वन्दना का लाभ भी प्राप्त होगा। अत: सभी साधर्मी बन्धुओं से इस अवसर पर सपरिवार, इष्ट मित्रों सहित पधारने का विनम्र अनुरोध है।

निवेदक : श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट,
173-175, मुम्बादेवी रोड, मुम्बई।

सैद्धान्तिक चर्चा गताङ्क से आगे

अकालमरण भी स्वकाल में

ज्ञान का स्वरूप : विविध प्रश्नोत्तर

प्रश्न : केवलज्ञान का स्वरूप, क्रम और व्यवधान से रहित कहने में आता है, उसका क्या अर्थ है ?

उत्तर : यदि कोई भी पर्याय अनिश्चित हो तो उसके प्रगट होने के पहिले उसका ज्ञान नहीं होगा; इसलिए वह ज्ञान, केवलज्ञान नहीं हुआ। केवलज्ञान में क्रम आया, अक्रम नहीं आया। केवलज्ञान में कोई पर्दा, बाधा, अन्तराय नहीं है। जिज्ञासुओं को यह स्वीकार करना चाहिए कि उत्पाद, व्ययरूप, पर्याय प्रत्येक समय में होती है और उन उत्पाद, के लिए क्या-क्या उपादानकारण हैं, क्या-क्या निमित्तकारण, वह सब केवलज्ञान में बराबर आ जाते हैं; यदि न आवे तो केवलज्ञान नहीं कहलाता और वे पर्यायें, ज्ञेय नहीं कहलाती; इसलिए कब, कैसा निमित्त मिलेगा, वह सब अनिश्चित बात है - ऐसा मानना तात्त्विक नहीं है, कल्पित है।

किस समय में कैसा निमित्त मिलेगा? यह सब अवधिज्ञान में, मन:पर्ययज्ञान में और योगियों को मालूम पड़ता है, साथ ही अष्टांग महानिमित्तज्ञान में भी ज्ञात होता है और भगवान को केवलज्ञान में भविष्य की पर्याय ज्ञात न हो - ऐसी बात जैनधर्म में कैसे चल सकती है ?

प्रश्न : स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की गाथा - 321 से 323 में जो कहा है, उससे क्या सिद्ध होता है ?

उत्तर - जिस जीव को, जिस विधि से, जिस देश में, जिस काल में जो जन्म-मरण, सुख-दु:खादि नियत है, जिनेन्द्रदेव ने उसको जाना है। इससे उस जीव को, उस देश में, उस विधि से, उस काल में नियम से जन्म-मरण होता है, उसको दूसरा कोई बदल नहीं सकता है। उसका अर्थ यह हुआ कि होनेवाली जन्म-मरण की जो विकारी पर्याय है, वह भगवान, केवलज्ञान में जानते हैं, उसका काल भी जानते हैं, उसका क्षेत्र भी जानते

हैं, उसकी विधि भी, अर्थात् उपादान-निमित्तरूप सामग्री सब नियतरूप से जिनेन्द्रदेव जानते हैं।

कैसा निमित्त, किसको, कहाँ मिलेगा, किस क्षेत्र में मिलेगा, उसकी कैसी प्रतिक्रिया (विधि) होगी ? - यह बात अनिश्चित रहती है - ऐसी मान्यता इन तीन गाथाओं से गलत सिद्ध होती है।

अनेकान्त : निश्चित-अनिश्चित

छह द्रव्यों की प्रत्येक पर्याय प्रत्येक समय में (अतीत, वर्तमान, अनागत) वह अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से निश्चित है। परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से निश्चित नहीं है, अर्थात् अनिश्चित है, किन्तु इसलिए उसका निश्चित काल मिट जाता नहीं है। श्री समयसार, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार की गाथा - 308 से 311 में सब जीव और अजीव की पर्यायों को क्रम-नियमित कहा है, कोई भी पर्याय को क्रम-अनियमित कहा ही नहीं है और पण्डित जयचन्दजी ने नियमित का अर्थ निश्चित किया है, इससे सिद्ध होता है कि सर्व छह द्रव्यों की अनादि से-अनन्त काल तक की पर्यायों का कालक्रम निश्चित ही है।

द्रव्य की व्याख्या, अनादि अनन्त पर्याय का पिण्ड - ऐसी की गयी है और गुण की व्याख्या, अपनी अनादि-अनन्त पर्याय का पिण्ड - ऐसी की गयी है। भूत, वर्तमान और भावी - सब पर्याय प्रत्येक द्रव्य की 'स्वोचित' ही होती है - ऐसा द्रव्य समूह का ज्ञेय स्वभाव है और 'स्वोचित' पर्याय हो, वे नियम से निश्चित ही हो सकती है। देखिये, श्री प्रवचनसार, गाथा - 239 की टीका। उस टीका का उपयोगी भाग निम्नानुसार है -

'भूत-वर्तमान-भावी स्वोचित पर्यायों के साथ अशेष द्रव्य-समूह को जाननेवाले आत्मा को जानता है।'

अन्यमत का प्रसंग....

एक भी विकारी पर्याय का या उसका एक भी धर्म का एक समय भी परिपूर्ण ज्ञान वर्तमान में न हो तो द्रव्य का पूर्णज्ञान, गुणों का पूर्णज्ञान और पर्यायों का पूर्णज्ञान कभी भी नहीं होगा। ज्ञान का ऐसा अपूर्णस्वरूप तो

अन्यधर्मी मानते हैं, किन्तु जैनधर्म उनसे विरुद्ध मानता है। देखो, सूरत से प्रकाशित (पृष्ठ 162) श्री प्रवचनसार, गाथा 41 में श्री जयसेनाचार्य कहते हैं कि–

'इस प्रकार अतीत व अनागत पर्यायें, वर्तमान ज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं होती हैं – ऐसे बौद्धों के मत को निराकरण करते हुए तीन गाथाएँ कहीं, उसके पीछे इन्द्रियज्ञान से सर्वज्ञ नहीं होता है, किन्तु अतीन्द्रियज्ञान से होता है – ऐसा कहकर, नैयायिकमत के अनुसार चलनेवाले शिष्य को समझाने के लिए गाथा दो – ऐसे समुदाय से पाँचवें स्थल में पाँच गाथाएँ पूर्ण हुई।'

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इन गाथा 37-39 में बौद्धों के मत का निराकरण किया है, इससे सिद्ध हुआ कि अनागत पर्यायें, ज्ञान में एक समय भी प्रत्यक्ष न होवे तो उसका एक भी अंश, उसका एक भी धर्म, उसका प्रदेश, उसका काल, उसका आकार (स्वरूप) आदि में से एक छोटे में छोटा अंश, अर्थात् अविभाग प्रतिच्छेद, ज्ञान में नहीं आवेगा किन्तु ऐसी मान्यता जैन की नहीं होती।

श्री प्रवचनसार, गाथा 40, 41 (में) नैयायिकमत का अभिप्राय असत्य है – ऐसा बतलाते हैं। जो कोई एक भी भविष्य की विकारी पर्याय, सर्वज्ञ के ज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं होती है – ऐसा माननेवाला तो, जिसको सबसे ज्यादा इन्द्रिय और मानसिक ज्ञान हो, उसको ही सर्वज्ञ मानते हैं, जो कि यह अभिप्राय अयथार्थ है। मतिज्ञान आदि चारों ज्ञान क्रम-क्रम से वर्तन करते हैं, इसलिए वे क्षायोपशमिक है। इससे सिद्ध हुआ कि अपने को जैन मानने पर भी, जो जीव, नैयायिक के अनुसार माने तो उसकी मान्यता असत्य है, वह सर्वज्ञ की आज्ञा के बाहर है।

निश्चित पर्याय की सिद्धि : आधुनिक प्रमाण

वर्तमान में 'जॉन काल्वर्ट' नाम का एक व्यक्ति अमेरिका में रहता है, जो कि तत्त्वज्ञान से अपरिचित है। इस पर भी वह कल, किस पेपर में कौनसा समाचार आवेगा और किसी भी भाषा के प्रथम पृष्ठ पर मुख्य समाचार का हेडिंग क्या आयेगा? वह आज स्पष्ट बता देता है। इस विषय में दिनांक 14 से दिनांक 17-5-1963 के बम्बई के प्रसिद्ध पत्र 'टाइम्स

ऑफ इण्डिया', 'जामे जमशेद', 'जन्मभूमि' पत्रों में देख लेवें, उसमें विस्तार से वर्णन है।

मिस्टर पीटर नाम का एक भविष्य ज्ञानी है, जिनका जन्म हालैण्ड में हुआ है। आजकल वह अमेरिका में रहता है। वह दूसरे व्यक्तियों के भविष्य में क्या-क्या मुख्य घटनाएँ होनेवाली हैं, वह कुछ समय की मर्यादा तक का कह देता है। यह बात कसौटी पर लेने से सच्ची मालूम पड़ी है।

अब देखिये कि वर्तमान काल के कितनेक शास्त्र अभ्यासी कहते हैं कि ज्ञेयों में विकारी पर्याय अनिश्चित है, जब वह वर्तमानरूप प्रगट होगी, तब ज्ञान में प्रत्यक्ष होगी; जबकि वर्तमान में तत्त्वज्ञान से अपरिचित व्यक्ति भी भविष्य की बातें निश्चित जान लेते हैं और अनादि से अनन्त काल तक का केवलज्ञानी और सिद्ध भगवान के ज्ञान में वह अनिश्चितरूप से है ऐसा मानना।... देखिए कैसी विचित्रता है! जो कालवर्ट और पीटर अपना भविष्य नहीं जान सकते और दूसरों का वह भविष्य बता देते हैं।

भविष्य में होनेवाली विकारी पर्यायें अनिश्चित है, वह किसने जाना? केवलज्ञानी के ज्ञान में तो तात्कालिकरूप और विशेषरूप से प्रत्यक्ष निश्चित ही दिखता है, अवधिज्ञानी को भी अपने ज्ञान के विकास की मर्यादा के अनुसार निश्चित दिखता है और उसी प्रकार मन:पर्ययज्ञानी को, योगियों को, श्रुतकेवलियों को, श्रुतज्ञानियों को और अष्टांग महानिमित्तज्ञानियों को निश्चितरूप से दिखता है।

आगम तो भगवान अरहन्त सर्वज्ञ उपज्ञ है, अर्थात् सर्वज्ञ ने स्वयं जानकर उपदिष्ट है, उसमें तो कहीं भी केवलज्ञान का विषय (ज्ञेय) अनिश्चित हो - ऐसा कहा नहीं है। इससे सिद्ध हुआ कि वह अनिश्चित की बात कल्पित है। ***(देखिये, श्री प्रवचनसार, गाथा 34 और उसकी टीका)***

अकाल-अनियम-अनवस्थित-अनियत-अनिश्चित : शब्दार्थ

जिज्ञासुओं को सावधानीपूर्वक शास्त्र के शब्दों का अर्थ करना चाहिए। अर्थ करने की रीति में, किस नय का कथन है, वह भी समझ लेना चाहिए। किसी भी शब्द और वाक्य का अर्थ, तत्त्वस्वरूप से विरुद्ध नहीं होना चाहिए।

(1) अकाल – सोपक्रम आयुवाले जीव के नियम से आयुकर्म की उदीरणा होती है, उस मरण को व्यवहारनय से अकाल-मृत्यु कहते हैं और निश्चयनय से सब मरण को 'स्वकर्म कृत काल कला' कहा है, कोई भी मरण आगे-पीछे नहीं होता है। (अनित्य पञ्चाशत, श्लोक 18)

'**अकाल**' शब्द भगवान पद्मप्रभ की पूजा में भी आता है, वह निम्न प्रकार है –

इस विकट काल अकाल माहीं पद्म प्रभु पद ध्याइये।
तिहिं भक्ति वस निज लहै पद्मा सुख अनोपम पाइये॥

इस पंक्ति में 'अकाल' शब्द का अर्थ अनिश्चित काल हो सकता नहीं है, किन्तु पञ्चम काल को विकट काल कहने में आया है। इसलिए उसको 'अकाल' कहा है, 'अकाल मृत्यु' में अकाल का अर्थ अनिश्चित काल – ऐसा होता नहीं है। आगम में कहीं पर ऐसा अर्थ करने में आया ही नहीं है। भगवती आराधना में **आयुकर्म की उदीरणा को अकाल कहा है। वह अपने स्वकाल में ही होती है, अन्य काल में नहीं।** जिस जीव को अकाल मृत्यु हुई – ऐसा कहने में आता है, उसने तो पूर्व भव में सोपक्रम आयु का बंध किया था, (निरुपक्रम आयु का बन्ध नहीं किया था), इतना आयुकर्म के स्वरूप भेदों को बताने के लिये अकाल मृत्यु कहने में आया है; इसलिए वे अपने निश्चितकाल में नहीं होती है – ऐसा नहीं है।

(2) अनियम : 'अनियम' शब्द के प्रयोग से अनिश्चितपना मान लेना न्याय से विरुद्ध है। 'अनियम' का अर्थ नियम नहीं, इतना होता है। राजवार्तिक में अध्याय पहला, सूत्र तीसरे की टीका में 'वार्तिक' सात में शिष्य ने एक प्रकार काल का नियम सब भव्यों के लिये कहा था। ऐसा नियम नहीं है, वह बताने के लिये '**काल अनियमात्**' ऐसा कथन वार्तिक 9 में आया है परन्तु मोक्ष जानेवाले जीव को स्वकाल अनिश्चित है – ऐसा उसका अर्थ होता नहीं है। मोक्ष प्राप्त करनेवाले जीवों को निर्जरा और मोक्ष का काल अनिश्चित है – ऐसा अर्थ करना, वह श्री धवला से श्री प्रवचनसार में जयसेनाचार्य की टीका से, द्रव्यसंग्रह की टीका से, श्री समयसार कलश टीका से तथा श्री प्रवचनसार, गाथा 200 की टीका से विरुद्ध है।

(3) अनवस्थित : संसारी जीव की पर्याय को स्वभाव से अनवस्थित कहा है, उसका अर्थ इतना है कि कोई का स्वभाव केवल अविचल एकरूप रहनेवाला नहीं है। इसका अर्थ कौनसी विकारी पर्याय कब होगी, वह निश्चित नहीं है – ऐसा नहीं होता। 'अनवस्थित' का अर्थ विभावरूप पर्याय होता है, अर्थात् मनुष्यादि पर्याय विनश्वर है – ऐसा उसका अर्थ समझ लेना। ***(देखिये श्री प्रवचनसार, गाथा 120, श्री जयसेनाचार्य की टीका।)*** सिद्ध की पर्याय ऐसी न होने से अविनाशी कहने में आती है और संसारी पर्याय इससे विरुद्ध है। पण्डित हेमराजजी लिखते हैं कि 'इसलिए संसार में मनुष्यादि कोई भी पर्याय अविनाशी नहीं है। स्वभाव ही से सब अस्थिररूप है।' इसलिए अनवस्थित का अर्थ अस्थिर, अर्थात् सिद्ध की अविनाशी पर्याय से विरुद्ध – ऐसा अर्थ होता है।

(देखिये, श्री अमृतचन्द्राचार्य की टीका, और श्री समयसार की गाथा 203 की टीका)

(4) अनियत : वह विभाव पर्याय, जो अस्थिर पर्याय है, उसी को अनियत कहने में आता है क्योंकि वह एकरूप नहीं रहती है, किन्तु प्रत्येक विभावपर्याय का स्वकाल है, वह अन्य काल में होती नहीं है।

(5) अनिश्चित : अनिश्चित पर्याय का अर्थ अस्थिर होता है। उसको अनियत भी कहते हैं लेकिन उसका स्वकाल नियत नहीं है – ऐसा नहीं है। नियत है–निश्चित है। यदि निश्चित न हो तो वह ज्ञेय की व्याख्या में आवेगा ही नहीं।

प्रथम प्रश्न का उत्तर पूर्ण करने से पूर्व, भगवान् अमृतचन्द्राचार्य के कलश 62 पर लक्ष्य खींचा जाता है, वह कलश निम्न प्रकार है –

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥

अर्थात् आत्मा ज्ञानस्वरूप है, स्वयं ज्ञान ही है। वह ज्ञान के अतिरिक्त अन्य क्या करे ? आत्मा, परभाव का कर्ता है – ऐसा मानना (तथा कहना), सो व्यवहारी जीवों का मोह (अज्ञान) है।

जयवन्त वर्तो स्याद्वाद मुद्रित जैनेन्द्र शब्द ब्रह्म।
जयवन्त वर्तो शब्दब्रह्ममूलक आत्मतत्त्वोपलब्धि॥ क्रमशः

समाधितन्त्र ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन

अवस्थादृष्टि से आत्मा के तीन प्रकार

विविक्त आत्मा का स्वरूप कहने की प्रतिज्ञा की है, वहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि आत्मा कितने प्रकार का है? और उसमें से कैसा आत्मा उपादेय है तथा कैसा हेय है? आत्मा के कितने प्रकार हैं, जिसमें से आप पर से विभक्त शुद्ध आत्मा को ही उपादेयरूप से बतलाना चाहते हैं। इस आशंका के उत्तररूप श्लोक आचार्यदेव कहते हैं।

बाहरन्तःपरश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपायेत्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत्॥4॥

समस्त जीवों में बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा, ऐसे तीन प्रकार के आत्मा हैं। उनमें से अन्तरात्मारूप उपाय द्वारा परमात्मपना उपादेय करना और बहिरात्मपना छोड़ना।

★ जो बाह्य शरीरादि पदार्थों को भी आत्मा मानता है, वह बहिरात्मा है।

★ जिसे अन्तर में देहादिक से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा का भान है, वह अन्तरात्मा है और

★ चैतन्यशक्ति विकास कर जिसने परम सर्वज्ञपद प्रगट किया है, वह परमात्मा है।

इन तीन प्रकारों में से सर्वज्ञता और परिपूर्ण आनन्दरूप परमात्मपना परम उपादेय है। उसका उपाय अन्तरात्मपना है और बहिरात्मपना छोड़ने योग्य है। परमात्मा होने का साधन क्या? अन्तरात्मपना, वह परमात्मा होने का साधन है। अन्तर में परमात्मशक्ति भरी है, उसकी प्रतीति करके उसमें से ही परमात्मदशा प्रगट होती है। इसके अतिरिक्त बाहर में दूसरा कोई उसका साधन है ही नहीं। आत्मा के अन्तर अवलोकन में कोई बाहर की चीज सहायक भी नहीं और विघ्नकारक भी नहीं – ऐसे अन्तरस्वभाव की दृष्टि करे तो परमात्मपना हो और बाह्य में आत्मबुद्धिरूप बहिरात्मपना छूट जाये।

जो अन्तरात्मा हुआ, वह अब अन्तरशक्ति में एकाग्र होकर परमात्मा हो जायेगा। इस प्रकार हेयरूप परमात्मपने को छोड़ने का तथा उपादेयरूप परमात्मपना प्रगट करने का उपाय अन्तरात्मपना है और वह अन्तरात्मपना, कर्मादि से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा को जानने से ही होता है। इसलिए यहाँ भिन्न आत्मा का स्वरूप कहा जाता है।

अरिहन्त और सिद्ध भगवान, साक्षात् परमात्मा हो गये हैं। उन परमात्मा को भी परमात्मदशा प्रगट होने से पहले बहिरात्मपना था। उसे छोड़कर अन्तरात्मा हुए और उस उपाय से परमात्मपना प्रगट किया।

वर्तमान में जो धर्मी-अन्तरात्मा है, उसे भी पूर्व में अज्ञानदशा में बहिरात्मपना था और अब अल्प काल में परमात्मपना प्रगट होगा।

जो जीव, अज्ञानी-बहिरात्मा है, उसे भी आत्मा में परमात्मा और अन्तरात्मा होने की सामर्थ्य है। आत्मा में केवलज्ञानादि परमात्मशक्ति है। यदि शक्तिरूप से केवलज्ञानादि न हों तो उन्हें रोकने में निमित्तरूप केवलज्ञानावरणीय कर्म कैसे हो? बहिरात्मा को केवलज्ञानावरण है, वह ऐसा सूचित करता है कि उसमें भी शक्तिरूप से केवलज्ञान है।

इस प्रकार आत्मा की बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा - ऐसी तीन अवस्थाएँ हैं। उनमें से चैतन्यशक्ति की प्रतीति द्वारा बहिरात्मपना छोड़ने योग्य है और परमात्मपना प्रगट करने योग्य है।

आत्मा का स्वरूप एक समय में परिपूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप है। उसकी तीन प्रकार की अवस्थाएँ हैं। जो अपने चिदानन्दस्वरूप को भूलकर बाहर में शरीरादि ही मैं हूँ - ऐसा मानता है, वह बहिरात्मा है, वह अधर्मी है और अकेले विभाव को साधता है। जिसने देह से भिन्न, राग से पार अपने ज्ञानानन्दस्वभाव से परिपूर्ण आत्मा को अन्तर में जान लिया है, वह अन्तरात्मा है, वह धर्मात्मा है, वह परमात्मदशा का साधक है; और चिदानन्दस्वभाव में लीन होकर केवलज्ञान-अनन्त आनन्द इत्यादि जिन्हें प्रगट हो गये हैं, वह परमात्मा है।

इस बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा, इन तीन दशाओं में से एक

समय में एक दशा व्यक्त होती है। बहिरात्मदशा के समय अन्तरात्मपना या परमात्मपना व्यक्त नहीं होता; अन्तरात्मदशा के समय परमात्मपना या बहिरात्मपना नहीं होता और परमात्मदशा के समय बहिरात्मपना या अन्तरात्मपना नहीं होता। अरिहन्त और सिद्ध भगवान, वे परमात्मा हैं; चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक के साधकजीव, वे सभी अन्तरात्मा हैं और मिथ्यादृष्टि जीव, बहिरात्मा हैं।

बहिरात्मदशा के समय भी आत्मा की शक्ति में परमात्मा होने की सामर्थ्य पड़ी है। भगवान ने समवसरण में ऐसी दिव्य घोषणा की है कि अहो जीवों! तुम्हारे आत्मा में परमात्मशक्ति भरी हुई है, उस शक्ति का विश्वास करो। जो जीव अपनी परमात्मशक्ति का विश्वास करता है, उसे बहिरात्मपना छूटकर, वह अन्तरात्मा होता है और वह अपनी चैतन्यशक्ति में लीन होकर उसमें से परमात्मदशा प्रगट करता है।

जो परमात्मा हुए, उन्हें भी पूर्व में बहिरात्मदशा थी, परन्तु पश्चात् अपनी परमात्मशक्ति का श्रवण करते हुए उसका बहुमान लाकर, उसके सन्मुख होने से वह बहिरात्मपना मिटा और अन्तरात्मपना हुआ और फिर स्वभाव में लीन होकर वे परमात्मा हुए। इस प्रकार जो बहिरात्मा थे, वे ही अपनी शक्ति के अवलम्बन से परमात्मा हुए। ऐसी परमात्मा होने की सामर्थ्य प्रत्येक आत्मा में है। अभव्य में भी वैसी सामर्थ्य है परन्तु वह अपनी शक्ति की प्रतीति नहीं करता; इसलिए वह उसे कभी व्यक्त नहीं होती है।

कोई ऐसा कहे कि अभव्य जीव में केवलज्ञान की शक्ति नहीं है — तो यह बात मिथ्या है। अभव्य को भी केवलज्ञानावरणीय कर्म तो है या नहीं? यदि केवलज्ञान शक्ति न हो तो उसे आवरण करनेवाला कर्म क्यों होगा? अनादि से समस्त जीवों को केवलज्ञानावरणीय कर्म है और आत्मा में केवलज्ञानादि परमस्वभाव भी अनादि से ही है। उस स्वभाव की प्रतीति करके, जो उसमें लीन होता है, उसे वह केवलज्ञानादि शक्ति प्रगट हो जाती है और केवलज्ञानावरणीय इत्यादि कर्म छूट जाते हैं। यहाँ तो यह बतलाना

है कि तेरे आत्मा में अभी भी परमात्मदशा प्रगट होने की सामर्थ्य पड़ी है, उसकी प्रतीति कर और बहिरात्मबुद्धि छोड़!

दर्शनमोह सम्बन्धी सम्यक्तमोहनीय प्रकृति तथा सम्यक्तप्रकृति-ये दो प्रकृतियाँ तो अनादि मिथ्यादृष्टि को होती नहीं है। वे तो एक बार सम्यक्त्वप्राप्त अमुक जीव को ही होती है; अनादि मिथ्यादृष्टि को तो अकेली मिथ्यात्वप्रकृति ही होती है, दूसरी दो प्रकृतियाँ उसे नहीं होती है परन्तु उसकी तरह अनादि मिथ्यादृष्टि को या अभव्य को केवलज्ञानावरण तथा मन:पर्ययज्ञानावरण कर्मप्रकृतियों का भी अभाव नहीं है। पहले से ठेठ बारहवें गुणस्थान तक के समस्त जीवों को पाँचों ज्ञानावरण कर्म होते हैं और ठेठ दसवें गुणस्थान के अमुक भाग तक ज्ञानावरण की पाँचों प्रकृतियाँ बँधा ही करती है। इस बन्धन के आधार से यहाँ सिद्ध यह करना है कि सभी आत्माओं में वे केवलज्ञानादि शक्तिरूप से है। 'सर्व जीव है सिद्ध सम' - शक्तिरूप से सभी आत्मा परिपूर्ण सिद्ध भगवान जैसी सामर्थ्यवाले हैं परन्तु 'जो समझें वे होय' अपनी स्वभाव शक्ति को जो समझते हैं, उन्हें उस शक्ति में से परमात्मदशा प्रगट होती है।

मेरे आत्मा में परमात्मा होने की सामर्थ्य है और उसमें से परमात्मदशा प्रगट करना, वह उपादेय है। ऐसी शक्ति की प्रतीति करने से बहिरात्मपना छूटकर अन्तरात्मपना होता है और वह परमात्मा होने का उपाय है। इस प्रकार बहिरात्मपना छोड़ने योग्य है, परमात्मपना प्रगट करने योग्य है और अन्तरात्मपना उसका उपाय है।

देखो! परमात्मा होने का, अर्थात् मोक्षसुख की प्राप्ति का उपाय अपने में ही बतलाया है! शुद्धस्वभाव के अनुभवरूप जो अन्तरात्मदशा है, वही मोक्षसुख का उपाय है। इसके अतिरिक्त बाहर के कोई भाव, मोक्षसुख का उपाय नहीं है। अपनी आंशिक शुद्धता ही अपनी पूर्ण शुद्धदशा का कारण है।

दूसरा, कोई बाह्यवस्तु छोड़ने की बात नहीं की परन्तु बहिरात्मपना छोड़ने को कहा है। बाह्यवस्तु को तो आत्मा ने कभी ग्रहण ही नहीं किया, इसलिए उसे आत्मा छोड़ता ही नहीं; वह तो छूटी हुई ही है परन्तु उस बाह्य वस्तु को अपनी माननेरूप जो बहिरात्मपना है, वह आत्मा की दशा में है

और वह बहिरात्मपना छोड़ना है। आत्मा के अन्तरस्वभाव के भान द्वारा बहिरात्मपना छूटता है।

परमात्मशक्ति से परिपूर्ण ऐसे अपने आत्मस्वभाव को भूलकर 'देह, वह मैं; राग, वह मैं' — ऐसी बहिरात्मबुद्धि से, अर्थात् मिथ्याबुद्धि से जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है और वह दुःख का ही कारण है; इसलिए वह बहिरात्मबुद्धि छोड़नेयोग्य है।

बहिरात्मबुद्धि छोड़ने का उपाय क्या ? अन्तरात्मपना, वह बहिरात्मपने के त्याग का उपाय है। मैं शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, ज्ञान-दर्शनस्वरूप एक शाश्वत् आत्मा ही मेरा है, इसके अतिरिक्त संयोग लक्षणरूप कोई भी भाव मेरे नहीं हैं, वे मुझसे बाह्य हैं - ऐसा भेदज्ञान करके आत्मा के अन्तरस्वभाव में आत्मबुद्धि करना, वह अन्तरात्मपना है। ऐसे अन्तरात्मपनेरूप साधन द्वारा परमात्मदशा प्रगट करने का उपाय करना चाहिए।

अब, बहिरात्मपना छोड़कर, अन्तरात्मा होकर, परमात्मपना प्रगट करने के लिये शिष्य पूछता है कि प्रभो! इन तीनों का लक्षण क्या है ? उसका उत्तर कहते हैं।

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रांतिरांतरः
चित्तदोषात्मविभ्रांतिः परमात्माऽतिनिर्मलः ॥5॥

शरीरादि बाह्य पदार्थों में जो आत्मा की भ्रान्ति करता है, वह बहिरात्मा है और राग-द्वेषादि दोष तथा चैतन्यस्वरूप आत्मा के सम्बन्ध में जो भ्रान्तिरहित है, वह अन्तरात्मा है। जो रागादि दोष को दोषरूप जानता है, और अपने चैतन्यस्वभाव को स्वभावरूप जानता है, जिसे रागादि में 'आत्मा' की भ्रान्ति नहीं होती और मलिनता से भिन्न अपने शुद्धस्वभाव को जो निःशंकरूप से जानता है, वह अन्तरात्मा है और जो अत्यन्त निर्मल है, जिसके रागादि दोष सर्वथा मिट गये हैं और सर्वज्ञ परमपद जिसके प्रगट हो गया है, वह परमात्मा है। इस प्रकार तीन प्रकार के आत्मा का स्वरूप जानना चाहिए।

यह शरीरादि जड़पदार्थ प्रगटरूप से आत्मा से भिन्न हैं, वे कोई पदार्थ,

आत्मा के नहीं हैं; आत्मा से बाहर ही हैं, तथापि जो उन्हें अपने मानता है, वह जीव, बहिरात्मा है। यह शरीर मेरा, मैं देव, मैं मनुष्य, मैं पुरुष, मैं स्त्री, मैं श्वेत, मैं काला, मैं रागी, मैं द्वेषी, इस शरीर का कार्य मैं करता हूँ और शरीरादि की क्रिया से मुझे हित-अहित होता है - ऐसा माननेवाले जीव, बहिरात्मा / मिथ्यादृष्टि हैं, क्योंकि अपने आत्मा को बाह्य पदार्थ से भिन्न नहीं जानते हैं किन्तु बाह्य पदार्थों को ही आत्मा मानते हैं - ऐसे लक्षण से बहिरात्मपना पहचानकर, वह छोड़नेयोग्य है।

देह से भिन्न और रागादि से पार मेरा आत्मा, ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, ऐसा अन्तर में आत्मा के परमार्थस्वरूप को जो पहचानता है, वह अन्तरात्मा है। ऐसे लक्षण से अन्तरात्मपना पहचानकर, वह प्रगट करने योग्य है।

समस्त दोष से रहित आत्मा का पूर्ण ज्ञान-आनन्दस्वरूप प्रगट हो, वह परमात्मदशा है, वह परम उपादेय है।

यह श्री पूज्यपादस्वामी रचित समाधिशतक पढ़ा जा रहा है। आत्मा को समाधि कैसे हो और मोक्षसुख की प्राप्ति कैसे हो? - उसका उपाय बतलाते हैं।

अनादि काल से जीव, संसार में परिभ्रमण कर रहा है, उसका कारण अज्ञान और असमाधि है। वह कैसे छूटे तथा सुख और समाधि कैसे हो? यह बतलाते हैं। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है। उसे भूलकर, बाहर में देह-मन-वचन तथा रागादि, वही मैं हूँ - ऐसी बहिरात्मबुद्धि के कारण ही अज्ञानी अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। मैं देहादिक से भिन्न और रागादि से दोषों से पृथक् शुद्धज्ञानानन्दस्वरूप हूँ - ऐसी आत्मा की पहचान करके अन्तरात्मा होना, वह भवभ्रमण से छूटने का उपाय है।

गृहस्थाश्रम में रहनेवाला जीव भी ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा का भान करके अन्तरात्मा हो सकता है; अभी राग-द्वेष होने पर भी, आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है - ऐसा सम्यक्भान हो सकता है। समकिती धर्मात्मा, जीव-अजीवतत्त्वों को भ्रान्तिरहित यथार्थरूप से जानता है। जीव को

जीवरूप से जानता है; रागादि को रागादिरूप से जानता है; देहादिक को अजीवरूप से जानता है। देहादिक को और रागादिक को वह आत्मा का स्वरूप नहीं मानता है।

★ जीव तो ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वरूप है।

★ देह इत्यादि तो अजीव हैं, वह जीव से भिन्न हैं।

★ राग-द्वेष-अज्ञान, वे दु:खरूप भाव हैं, अर्थात् वे आस्रव और बन्धरूप हैं।

★ सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप भाव, वे जीव को सुखरूप हैं, वे संवर-निर्जरा-मोक्ष का कारण हैं।

– इस प्रकार समस्त तत्त्वों को ज्यों का त्यों जानकर, एक ज्ञानानन्दरूप अपने आत्मा में ही आत्मबुद्धि करता है, देहादिक को अपने से बाह्य जानता है, राग-द्वेष-अज्ञान को दु:खरूप जानकर छोड़ता है और सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र को सुखरूप जानकर आदर करता है – ऐसे जीव को अन्तरात्मा कहते हैं। ऐसा अन्तरात्मपना चौथे गुणस्थान से शुरु होकर बारहवें गुणस्थान तक होता है।

क्रमशः

वैराग्य समाचार

मुम्बई : श्रीमती प्रभावतीबेन रमणीकलाल दोशी का अत्यन्त शान्तपरिणामों से देह परिवर्तन हुआ है। आप आत्मार्थी श्री पंकजभाई दोशी की चाची थी।

बिजौलियां : श्री महावीरकुमार सेठिया का देह परिवर्तन अत्यन्त शान्त एवं जागृत परिणामों से हुआ है। आप अत्यन्त धार्मिक रुचिवन्त जीव थे। पण्डित देवेन्द्रकुमार, बिजौलियां के मौसाजी थे।

दिवंगत आत्मायें वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के प्रभाव से प्राप्त तत्त्वज्ञान के संस्कारों से अभ्युदय को प्राप्त हों – ऐसी भावनापूर्वक तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार परिजनों को हार्दिक संवेदनाएँ प्रेषित करता है।

एक शिक्षाप्रद कथा | मङ्गलायतन संस्कार वाटिका

सबै दिन जात न एक समान

जीवराज की कर्मकिशोर से बचपन से ही ऐसा घनिष्ठ मित्रता है, मानो उन दोनों का जन्म–जन्म का साथ रहा हो। जीवराज चेतन होकर भी अपने कर्तव्य पथ से भटका हुआ है और कर्मकिशोर जड़ होने पर भी अपने कर्तव्यपथ से कभी नहीं भटकता। वह अपने काम के प्रति पूरी तरह ईमानदार है, कर्तव्यनिष्ठ है।

यद्यपि जीवराज, कर्मकिशोर का जन्म–जन्म का साथी है, दोनों में अत्यन्त घनिष्ठता है परन्तु जीवराज यदि कोई अपराध करता है तो कर्मकिशोर उसे दण्ड देने से भी नहीं चूकता और यदि वह भले काम करता है तो उसे पुरस्कृत भी करता है, उसका सम्मान भी करता है और उसे लौकिक सुखद सामग्री दिलाने में कभी पीछे नहीं रहता।

कोई कितना भी छुपकर गुप्त पाप करे अथवा भले काम करते हुए उनका बिल्कुल भी प्रदर्शन न करे तो भी कर्मकिशोर को पता चल ही जाता है। कहने को वह जड़ है; पर पता नहीं उसे कैसे पता चल जाता है, उसके पास कौन–सी सी.आई.डी. की व्यवस्था है, कौन–सा गुप्तचर विभाग सक्रिय रहता है, जो उसे जीव के सब अच्छे–बुरे (पुण्य–पाप) कार्यों की जानकारी दे देता है?

एक बार जीवराज ने कर्मकिशोर से पूछ ही लिया – 'मित्र! तुम कैसे विचित्र हो? जो बिना ज्ञान के ही जीवों के गुप्त से गुप्त पुण्य–पापों का भी पता लगा लेते हो? उनके सभी शुभ–अशुभभावों को न केवल पता लगा लेते हो, उनके पुण्य–पाप के अनुसार उन्हें दण्डित और पुरस्कृत करने की व्यवस्था भी कर देते हो? यह बात मेरी समझ में अभी तक नहीं आयी। क्या तुम इसका रहस्य बताओगे?'

कर्मकिशोर ने कहा – 'शुभाशुभभावों के अनुसार दण्ड विधान करने से जानने, न जानने का कोई सम्बन्ध नहीं है। जानने को तो सर्वज्ञ भगवान भी सबकुछ जानते हैं परन्तु वे किसी को दण्डित या पुरस्कृत नहीं करते; क्योंकि वे वीतरागी हैं न! हमें भी कौन–सा राग–द्वेष है, जो हम किसी का भला–बुरा करें। अतः तुम्हारे शुभाशुभ परिणामों के अनुसार हम और तुम स्वतः लोह–चुम्बक की भाँति परस्पर बंध जाते हैं और हमारे उदय में अनुकूल–प्रतिकूल संयोग

स्वत: ऑटोमेटिक–बिना किसी के मिलाये ही मिलते–बिछुड़ते रहते हैं।'

'वस्तुत: बात यह है कि तुम सब स्वयं अपने ज्ञाता–दृष्टा स्वभाव और अपने कार्य की सीमाओं को भूलकर दु:खों के बीज बोते हो और अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ी मारते हो। यदि तुम चाहो तो अपनी अनन्त शक्तियों को पहचान कर, अपने स्वभाव की सामर्थ्य को जानकर, हमारे बन्धन से मुक्त होकर सदा के लिए सुखी हो सकते हो। हम किसी को बिना कारण बलात् बन्धन में नहीं डालते। हमारा किसी से कोई वैर–विरोध है ही नहीं।'

कर्मकिशोर ने अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए आगे कहा – ''यद्यपि हमें दुष्ट कहकर कोसा जाता है। भोले भक्तों द्वारा भगवान से प्रार्थना की जाती है कि 'हे प्रभो! इन दुष्टकर्मों को निकाल दो और हमारी रक्षा करो।' हम पर यह मिथ्या आरोप लगाया जाता है कि 'हम जीवों को परेशान करते हैं।' हमारे विरुद्ध भजन बना–बनाकर ऐसा प्रचार किया जाता है कि—

कर्म बड़े बलवान जगत में फेरत हैं

एक भक्त ने तो यहाँ तक कह डाला —

मैं हूँ एक अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे।
कियो बहुत बेहाल सुनिये साहिब मेरे॥

जबकि वस्तुस्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है। हमारा 148 सदस्यों का बड़ा परिवार है, जो बिल्कुल निर्दोष है। जब जीव अपने में शुभाशुभभाव करते हैं तो हम सहज ही जीवों की ओर खिंचे चले जाते हैं, इसमें हमारा क्या दोष है? फिर भी जीव हमें ही दोषी ठहराता है।''

जीवराज के पहले पूर्वभव में किए सत्कर्मों के फलस्वरूप कर्मकिशोर ने उसकी रुचि के अनुकूल सभी लौकिक सुख–सामग्री जुटाने में कोई कमी नहीं रखी। उसे किसी से राग–द्वेष तो है नहीं। जीवराज ने पूर्व में सत्कर्म किये थे तो उनका फल तो उसे मिलना ही था, सो मिला है। कर्म तो मात्र निमित्त बनते हैं। इस कारण भी जीवराज को अपनी मनोकामनायें पूर्ण करने में कभी/ कोई बाधा नहीं हुई। यद्यपि ये विषय–भोगों की सब सुख–सुविधायें भी पूर्वकृत सत्कर्मों के फलस्वरूप ही मिलती हैं, परन्तु उन प्राप्त भोगों में उलझ जाने से व्यक्ति का भविष्य अन्धकारमय भी हो जाता है।

कर्मकिशोर ने कहा – ''जीवराज! यह विवेक तुमको नहीं था। इस कारण तुम विषयान्ध हो गये। पूर्व पुण्योदय से तुम्हें समस्त भोग सामग्री और मनोनुकूल हमारी बहिन 'मोहनी' भी मिल तो गई परन्तु उसमें उलझने से तुम्हारी जो दुर्दशा हुई, वह किसी से छिपी नहीं रही। तुम मोहनी के मोहजाल में फँसकर सातों व्यसनों में पारंगत हो गए। इस तरह तुम्हारी ही भूल से तुम्हारा सौभाग्य, दुर्भाग्य में बदल गया। समता जैसी सर्वगुण सम्पन्न पत्नी के होते हुए भी तुम व्यसनों और विषय-कषायों के जाल में ऐसे फंसे कि निज घर की सुध-बुध ही भूल गए।

दिन-रात नृत्य-गान देखना-सुनना, सुरापान करना आदि तुम्हारी दिनचर्या के अभिन्न अंग बन गये। 'मोहनी' भी तुमसे इतनी आकर्षित हो गई कि उसने अपने पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आये दूसरों को सम्मोहित करने के धन्धे को तिलांजलि देकर अकेले तुमसे ही नाता जोड़ लिया। मोहनी के संसर्ग से तुम्हारी ममता, माया, अनुराग, हास्य, रति आदि अनेक अवैध सन्तानें हो गईं। वे सभी सन्तानें मोहनी जैसी माँ के कुसंस्कारों के कारण कुपथगामी होकर तुम्हारे गले का फन्दा बन गईं।''

जिस तरह पुण्योदय से प्राप्त मिष्ठान्न खाते-खाते, पापोदय आ जाने से जीभ दाँतों के नीचे आ जाती है, उसी तरह जीवराज के पूर्व पुण्योदय से प्राप्त भोगों को भोगते-भोगते पाप का ऐसा उदय आया कि उसकी दुनियाँ ही पलट गई।

किसी ने ठीक ही कहा कि – ''**सबै दिन जात न एक समान।**'' विषयभोगों में मग्न सुख-सुविधा भोगी जीवराज के अल्पकाल में ही दुर्दिन आ गये। उसे अनेक रोगों ने घेर लिया। जवानी में ही सब यौवन क्षीण होने लगा और दुर्व्यसनों के कारण लक्ष्मी ने भी नाराज होकर मुँह मोड़ लिया तो मोहनी भी उसकी उपेक्षा एवं अनादर करने लगी।

अब तो जीवराज की स्थिति साँप-छछुंदर की तरह हो गयी। कहते हैं कि साँप द्वारा छछुंदर का शिकार करते समय यदि वह छछुंदर उसके गले में अटक जाती है, तो उसके निगलने पर साँप का पेट फट जाता है और उगलने पर वह अन्धा हो जाता है। यही दशा जीवराज की हो गयी।

इन सब परिस्थितियों को देख-देखकर जीवराज अपने किए पर बहुत पछताया। अब उसे अपना भविष्य घोर अन्धकारमय लगने लगा। वह किंकर्तव्य

विमूढ़ सा हो गया और 'अब मैं क्या करूँ' इस सोच में पड़ गया।

यद्यपि इस दशा में उसे अपनी पूर्व पत्नी समता की बहुत याद आ रही थी परन्तु वह यह सोचकर सहम जाता था कि 'अब मैं उसे अपना मुँह कैसे दिखाऊँ?' इस प्रकार जीवराज को अपनी भूल समझ में आ जाने पर अपनी भूल को सुधारने का उपाय सोचने लगा।

समता बहुत ही सुशील, सरल स्वभावी, क्षमाशील, धैर्यवान और विवेकी नारी है। वह दूरदर्शी भी बहुत है। पति के ऐसे असह्य अक्षम्य अपराध करने पर भी वह विचलित नहीं हुई, क्रोधानल में नहीं जली। मोहनी जैसी पतिता नारी के प्रति ईष्यालु नहीं हुई। तत्त्वज्ञान के बल पर उसने स्वयं को तो सँभाला ही, परिजनों को भी धैर्य बँधाया और जीवराज के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए यह सोचकर आशान्वित बनी रही कि 'परिणामों की स्थिति सदा एक-सी नहीं रहती।'

यद्यपि ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में विरले ही सहज-सामान्य रह पाते हैं परन्तु उसके जीवन में यह धर्म का ही प्रभाव था, जिससे वह अत्यन्त विषम परिस्थितियों में भी सहज रह सकी। अन्यथा कषायों के वशीभूत होकर व्यक्ति कैसे-कैसे अनर्थ कर बैठता है, यह किसी से छुपा नहीं है।

समता को अपने दु:खमय जीवन से अधिक चिन्ता जीवराज के अमूल्य मानव भव व्यर्थ बर्बाद होने की थी। अत: वह कामना करती थी कि किसी भी तरह इनकी ये दुष्प्रवृत्तियाँ दूर होना चाहिए और इन्हें आत्महित में लगना चाहिए; अन्यथा इनका यह अमूल्य मानव जीवन यों ही चला जाएगा।'' कविवर दौलतरामजी ने ठीक ही कहा है—

'यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनवो जिनवाणी।
इह विध गये न मिले, सुमणि ज्यों उदधि समानी॥

यदि यह मनुष्य पर्याय इसी तरह काम-भोग करते-करते बीत गयी तो पुन: मिलना असम्भव नहीं तो महादुर्लभ तो है ही।'

यह पढ़ते-सुनते हुए भी सारा जगत मोहनींद में ऐसा बेसुध है कि उसे अपने हित की कुछ खबर ही नहीं है।

जब समता को यह पता चला कि मोहनी, जीवराज की उपेक्षा करने लगी है और उन्हें नाना प्रकार दु:ख देने लगी है। बच्चे भी आवारा हो गये हैं। जिस

लक्ष्मी पर जीवराज को बहुत गर्व था, वह लक्ष्मी भी उससे रूठ गयी है। जो कुछ कमाई की थी, उसमें से अधिकांश तो मोहनी की चौखट पर ही चढ़ गयी। रही-सही यार लोग सुरापान में पी गये। जब बीमारी के इलाज की समस्या आयी तो सभी दोस्त कन्नी काट गये।

समता ने देखा कि जीवराज अब दीन-हीन और असहाय हो गये हैं। उसे विचार आया कि - 'ऐसा न हो कि वे निराश होकर कुछ अनर्थ कर लें। अतः उनकी खोज-खबर तो लेनी ही होगी। न केवल पति के नाते; बल्कि मानवता के नाते भी तो ऐसे लोगों का सहयोग करना अपना कर्तव्य है।' - ऐसा सोचते-विचारते उसके मन में उन पर दया आ गयी। उसका हृदय द्रवित हो गया।

उसने सोचा - 'सुबह का भूला यदि शाम को भी सही ठिकाने पर आ जाता है तो वह भूला नहीं कहलाता।'

कुछ लोग प्रथम श्रेणी के ऐसे समझदार होते हैं कि दूसरों को ठोकर खाते देख स्वयं ठोकर खाने से बच जाते हैं। दूसरी श्रेणी में कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो स्वयं ठोकर खाकर सीखते हैं तथा तीसरी श्रेणी के कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो ठोकरों पर ठोकरें खाते हैं, फिर भी नहीं सीखते, संभलते-ऐसे लोगों को कोई नहीं बचा सकता।

समता ने मन ही मन कहा - ''हमारे पतिदेव जीवराज प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण तो नहीं हो पाये; पर मुझे विश्वास है और आशा है कि वे दूसरी श्रेणी में तो उत्तीण हो ही जायेंगे। अतः मैं उनसे मिलूँगी और बिना कुछ क्रिया-प्रतिक्रिया प्रगट किए, बिना कोई कम्पलेन्ट एवं कमेन्टस किए, उनके अहं को ठेस पहुँचाये बिना, उनकी मान-मर्यादा का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुए उन्हें पुनः घर वापिस लौटने हेतु विनम्र निवेदन करूँगी। उनसे कहूँगी - 'कोई बात नहीं, आप भूत को भूल जाइए, गलतियाँ होना मानवीय कमजोरी है, जो यदा-कदा अच्छे-अच्छों से भी हो जाती हैं।''

वह जीवराज से मिली, उन्हें देखते ही उसका गला भर आया, कण्ठ रुंध गया। उसने जो कुछ सोचा था, कुछ भी नहीं कह सकी। जीवराज भी अपनी करनी पर इतना पश्चाताप कर चुके थे कि उनके सारे पाप पहले ही पश्चाताप की आग में जलकर खाक हो गये थे, रहे-सहे अश्रुधारा में बह गये।

जिस तरह सोना आग में तपकर कुन्दन बन जाता है, जीवराज भी पश्चाताप की ज्वाला में तपकर मानसिक रूप से कुन्दन की तरह पवित्र हो गया था। आंखों ही आंखों में जीवराज और समता पुन: बिना किसी कंडीशन (शर्त) के एक आदर्श पति-पत्नी के रूप में शेष जीवन जीने के संकल्प के साथ वापिस निज घर लौट आये।

सुखद संयोग में जीवन यापन करते हुए उनके दो सन्तानें हुई। पुत्र का नाम रख विराग और पुत्री का नामकरण किया ज्योत्सना। 'दूध का जला छाछ को भी फूँक-फूँक कर पीता है' इस लोकोक्ति के अनुसार जीवराज और समता ने अपनी दोनों सन्तानों को प्रारम्भ से ही ऐसे सदाचार के संस्कार दिए ताकि वे सन्मार्ग से न भटक सकें।

जीवराज अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में जब स्वयं सही रास्ते से भटक गये थे और मोहनी से उनके जो सन्तानें हुईं, वे सब उनकी ही लापरवाही से सन्मार्ग से भटके थे। अत: उन्होंने सोचा 'अब तो प्रत्येक - नया कदम सोच-समझकर ही उठाना होगा।' और उन्होंने ऐसा ही किया।

यह तो बहुत अच्छा हुआ, जो उन्होंने अपने शेष जीवन को सात्विकता से जिया परन्तु वे अभी भी अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति करने से वंचित ही हैं, क्योंकि अब तक उन्हें इस अतीन्द्रिय आत्मिक आनन्द पाने के लिए जिस अन्तर्मुखी उपयोग की आवश्यकता होती है, वह उपयोग जिन कारणों या साधनों से अन्तर्मुखी होता है, वे साधन उनके पास नहीं हैं।

अन्तर्मुखी उपयोग करने का एकमात्र उपाय **वस्तु स्वातन्त्र्य की यथार्थ समझ और श्रद्धा ही है;** क्योंकि वस्तु स्वातन्त्र्य के ज्ञान-श्रद्धान बिना अन्य के भले-बुरे करने का भाव निरन्तर बना रहता है।

हम अनादि काल से अपनी मिथ्यामान्यता के कारण ऐसा मानते आ रहे हैं कि 'मैं दूसरों का भला-बुरा कर सकता हूँ, दूसरे भी मेरा भला-बुरा कर सकते हैं। इस कारण हम निरन्तर दूसरों का भला या बुरा करने तथा दूसरे हमारा बुरा न कर दें, इस चिन्ता में आकुल-व्याकुल बने रहते हैं और इनके कर्तृत्व के भार से निर्भार नहीं हो पाते।'

जब हम वस्तु-स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त के माध्यम से यह समझ लें कि

न केवल प्रत्येक प्राणी; बल्कि पुद्गल के प्रत्येक परमाणु का परिणमन भी स्वाधीन है, किसी भी जीव के सुख-दुःख का कर्ता-हर्ता कोई अन्य नहीं है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है, स्वाधीन है, स्वसंचालित है, तब हम इस कर्तृत्व के भार से निर्भार हो सकेंगे।

ऐसी जानकारी और श्रद्धा के बिना जीव, पर के कर्तृत्व के भार से निर्भार नहीं हो सकते और निर्भार हुए बिना जीवों का उपयोग अन्तर्मुखी नहीं हो सकता तथा अन्तर्मुखी हुए बिना आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द और निराकुल सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। अत: सर्व प्रथम 'वस्तु स्वातन्त्र्य' के इस नैसर्गिक नियम को जानना और उस पर विश्वास करना बहुत जरूरी है, जिसका ज्ञान व श्रद्धान अभी तक जीवराज को नहीं हुआ। इस कारण अब तक वह सात्विक जीवन जीते हुए भी सच्चे सुख से वंचित ही रहा।

जीवन के उत्तरार्द्ध में भली होनहार से जब वह वस्तु स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त की श्रद्धा के माध्यम से परकर्तृत्व के भार से निर्भार होकर अन्तर्मुखी हुआ और आत्मानुभूति के साथ सच्चे निराकुल सुख का स्वाद लेकर तृप्त हुआ तो उसके मन में बड़ी तेजी से यह विकल्प उठा कि 'मेरे बेटा-बेटी इस सुख से वंचित न रह जायें। मैं उन्हें भी यह सब बता दूँ।' परन्तु तब तक उसकी शारीरिक स्थिति बे-काबू हो गयी। उसे अनायास लकवा लग गया। चाहते हुए भी वह अपनी सन्तान को उस अनुपम निधि की विधि नहीं बता पाया। इसलिए तो किसी ने कहा है —

काल करन्ता आज कर, आज करन्ता अब।
पल में परलय होयगा, बहुरि करेगा कब॥

यद्यपि जीवराज लकवा की स्थिति में बोल नहीं सकता, लिख भी नहीं सकता था परन्तु उसकी समझ यथावत थी, समझ में कोई अन्तर नहीं आया था, सोचने की शक्ति भी पूर्ववत् थी, इस कारण जीवन के उत्तरार्द्ध में बीमारी के पूर्व उसे जो वस्तु स्वातन्त्र्य का महामन्त्र मिल गया था, उसके चिन्तन एवं अनुशीलन की आँच से उसने अपने जीवनभर के सम्पूर्ण कर्तृत्व के अहंकार को पिघला दिया। आधि-व्याधि एवं उपाधि का त्यागकर समाधि की साधना करते हुए अपना जीवन सार्थक करने में अग्रसर हो गया।

(साभार : नींव का पत्थर, पण्डित रतनचन्द भारिल्ल)

समाचार-सार

क्रमबद्धपर्याय शिक्षण शिविर सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के शैक्षणिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत दिनाङ्क 28 जुलाई से 07 अगस्त 2012 तक क्रमबद्धपर्याय शिक्षण शिविर सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचनसार ग्रन्थ में समागत सर्वज्ञता के स्वरूप पर विशेष प्रवचनों का लाभ प्राप्त हुआ। साथ ही इस शिविर के लिये विशेषरूप से पधारे पण्डित अभयकुमार जैन, देवलाली द्वारा प्रतिदिन दो समय क्रमबद्धपर्याय विषय पर शिक्षण कक्षाओं का आयोजन किया गया। जिसका लाभ सभी मङ्गलार्थी छात्रों के साथ-साथ उपस्थित जनसमुदाय ने भी प्राप्त किया। निकट भविष्य में भी इस प्रकार के शिविर आयोजित किये जायेंगे।

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय में

दर्शन-विज्ञान विभाग का शुभारम्भ

जयपुर : टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में आयोजित शिक्षण शिविर के अवसर पर उस समय सारा वातावरण अत्यन्त उल्लासमय हो गया, जब मङ्गलायतन विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. सतीशचन्द्र जैन ने घोषणा की कि अब मङ्गलायतन विश्वविद्यालय में जैनदर्शन के सुव्यवस्थित अध्ययन हेतु दर्शन विज्ञान विभाग की स्थापना कर दी गयी है। उन्होंने इस अवसर पर यह घोषणा भी की कि इस विभाग के प्रमुख डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल को बनाया गया है एवं डॉ. जयन्तीलाल जैन इस विभाग के निदेशक होंगे। कार्यक्रम का शुभारम्भ डॉ. उत्तमचन्द जैन की अध्यक्षता में एवं बाल ब्रह्मचारी बसन्तभाई दोशी के मुख्य आतिथ्य तथा पण्डित रतनचन्द भारिल्ल के विशिष्ट आतिथ्य में हुआ। विश्वविद्यालय की इस योजना की पृष्ठभूमि से उपस्थित जनसमुदाय को अवगत कराते हुए श्री देवेन्द्रकुमार जैन ने बताया कि इस विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही वीतरागी तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार का एक स्वप्न था जो अब साकाररूप लेने जा रहा है। इस विभाग के अन्तर्गत संचालित पाठ्यक्रम की जानकारी देते हुए डॉ. जयन्तीलाल जैन ने बताया कि यह विभाग डिप्लोमा कोर्स, बैचलर डिग्री एवं मास्टर डिग्री कोर्स, नियमित कक्षाओं तथा पत्राचार के माध्यम से सर्व प्रथम हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम से प्रारम्भ करने जा रहा है, जिसे बाद में अन्य भाषाओं में भी संचालित किया जायेगा। इस हेतु समस्त

सरकारी औपचारिकताएँ कर ली गयी हैं और शीघ्र ही यह पाठ्यक्रम शुरु हो जायेगा। अपना उद्‌बोधन प्रदान करते हुए डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने बताया कि इस सन्दर्भ में मङ्गलायतन विश्वविद्यालय के चेयरमैन श्री पवन जैन से मेरी अनेकों बार चर्चा-वार्ता होती रही है और इसके सार्थक परिणाम अब हम सबके सामने हैं। उन्होंने विश्व समुदाय से इस पाठ्यक्रम में जुड़कर जैनदर्शन का सर्वांगीण अध्ययन करने का अनुरोध भी किया। कार्यक्रम के अन्तर्गत मङ्गलायतन विश्वविद्यालय की ओर से कुलपति डॉ. सतीशचन्द्र जैन, डॉ. जयन्तीलाल जैन, डॉ. ओमप्रकाश जैन एवं तीर्थधाम मङ्गलायतन की ओर से देवेन्द्रकुमार जैन ने मंचासीन अतिथियों का स्वागत किया। साथ ही डॉ. भारिल्ल का माल्यार्पण, श्रीफल, अंगवस्त्र तथा शाल ओढ़ाकर मङ्गलायतन विश्वविद्यालय परिवार की ओर से स्वागत किया गया। इसी प्रकार पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की ओर से भी डॉ. सतीशचन्द्र जैन आदि का भव्य स्वागत किया गया। इसी अवसर पर जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला का विमोचन भी किया गया।

बहिनश्री की जन्म-जयन्ती सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की अनन्य भक्त स्वानुभव विभूषित बहिनश्री चम्पाबेन की 99 वीं जन्म-जयन्ती अत्यन्त उत्साहपूर्वक मनायी गयी। इस अवसर पर जिनमन्दिर में जिनेन्द्र पूजन, तत्पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का माङ्गलिक सी.डी. प्रवचन; बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा का सभी को लाभ प्राप्त हुआ। सायंकालीन गोष्ठी में स्थानीय मङ्गलार्थी छात्रों एवं विद्वानों ने बहिनश्री के लोकोत्तर व्यक्तित्व के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए उनके जीवन से प्रेरणा ग्रहण करते हुए आत्महित के मार्ग में लगे रहने का संकल्प व्यक्त किया।

आगामी कार्यक्रम

भीलवाड़ा में प्रतिष्ठा महोत्सव : दिसम्बर माह में

भीलवाड़ा : श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन आत्मार्थी ट्रस्ट भीलवाड़ा द्वारा निर्मित श्री सीमन्धर जिनालय में स्थापित होनेवाले जिनबिम्बों का पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आगामी दिनाङ्क 24 से 30 दिसम्बर 2012 तक अत्यन्त हर्षोल्लासपूर्वक सम्पन्न होगा। इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री के माङ्गलिक सी.डी. प्रवचन एवं देश के ख्यातिप्राप्त विद्वानों का मङ्गल सान्निध्य प्राप्त होगा। इस अवसर पर समस्त साधर्मी बन्धुओं से भीलवाड़ा पधारने का विनम्र अनुरोध है।

दशलक्षण पर्व के पावन अवसर पर अवश्य मँगायें -

हमारे यहाँ उपलब्ध वीतरागी सत्साहित्य

श्री समयसार वचनिका	150/-
श्री समयसार	25/-
श्री प्रवचनसार	50/-
श्री नियमसार	30/-
श्री अष्टपाहुड़	50/-
पञ्चास्तिकाय संग्रह (जयसेनाचार्य कृत टीका)	40/-
छहढाला (हिन्दी/अंग्रेजी)	100/-
अध्यात्म पञ्च संग्रह	25/-
जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (हिन्दी/अंग्रेजी)	25/-
पद्मपुराण वचनिका	20/-
आराधनासार	20/-
वरांगचरित्र	20/-
समाधितन्त्र	25/-
इष्टोपदेश	25/-

प्रवचनसाहित्य - पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन (भाग 1-4)	140/-
कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन (खण्ड 1 व 2)	100/-
प्रवचन सुधा (प्रवचनसार प्रवचन, भाग 1-5)	100/-
प्रवचन रत्न चिन्तामणि (नियमसार प्रवचन, भाग 1, 2 व 3)	90/-
छहढाला प्रवचन (भाग1 से 3)	60/-
वृहद्द्रव्य संग्रह प्रवचन (भाग 1 व 2)	45/-
योगसार प्रवचन (भाग 1, 2)	40/-
धन्य मुनिदशा प्रवचन	35/-
अनुभवप्रकाश प्रवचन	25/-
अष्टपाहुड़ प्रवचन (भाग 1)	25/-
समयसार नाटक प्रवचन (भाग 1)	25/-
आतम के हित पन्थ लाग	25/-
भक्तामर रहस्य	20/-

कथा एवं बाल साहित्य

धन्य मुनिराज हमारे हैं - कथा संग्रह (खण्ड 1 से 5)	75/-
आत्म-साधिका	20/-
बोधिसमाधि निधान	20/-
जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला	10/-
बढ़ते चरण (के.जी 1-2, सेट, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती)	100/-
अकाल की रेखाएँ (कॉमिक्स)	15/-
बलिदान (कॉमिक्स)	15/-
कामदेव प्रद्युम्न (कॉमिक्स)	15/-

समयसार सिद्धि (भाग 1)	20/-
वचनामृत रहस्य	20/-
स्वतन्त्रता की घोषणा	18/-
स्वाधीनता का शंखनाद	18/-
देखो जी आदीश्वरस्वामी	18/-
ज्ञानचक्षु भगवान आत्मा	18/-
भेदविज्ञानसार	18/-
विषापहार प्रवचन	15/-
दशधर्म प्रवचन	15/-
वस्तुविज्ञान सार	15/-
जैनम् जयतु शासनम्	15/-
जिनप्रतिमा जिनसारखी	15/-
वह घड़ी कब आयेगी !(अपूर्व अवसर प्रवचन)	15/-
पञ्च कल्याणक प्रवचन	10/-
दीपावली प्रवचन	10/-

हमारे यहाँ उपलब्ध डी.वी.डी. / सी.डी.

वीतराग-वाणी (पूज्य गुरुदेवश्री के 9000 प्रवचन सोलह डी.वी.डी. में)	100/-
वीतराग-वाणी (पूज्य गुरुदेवश्री के 2700 हिन्दी प्रवचन सात डी.वी.डी. में)	50/-
मङ्गल जिनवाणी (श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, योगसार, इष्टोपदेश, समाधितन्त्र, एवं आत्मसिद्धि शास्त्र की संगीतमयी प्रस्तुति)	25/-
समयसार नाटक	25/-
देव-शास्त्र-गुरु भक्ति	25/-